Published by Munnilal Jain Manger Jain Dharma
Pracharak Pustakalaya Seoni Chapra.

Printed by R. Y. Shedge at the Nirnaya-Sagar
Press, 23, Kolbhat Lane, Bombay.

प्रस्तावना.



प्रियपाठक महाशयों यदि परमपूज्य जैनाचार्योंके उपदेशाऽमृतका सार देखा जाय तो यही अनुभवमें आता है कि निश्चयसे जीवोंको मनुष्य-पर्य्यायका प्राप्त होना नितान्त कठिन है परन्तु ऐसी दुर्लभ मनुष्य पर्य्यायको प्राप्त करके भी ये जीव विषयकषायोंके पुष्ट करनेमेंही आयु व्यतीत कर रहे हैं. अस्तु. इस भवमें सुखपूर्वक (विषयकषायोंकी शान्तिके साथ) जीवन व्यतीत करके परलोकमें सद्गतिके प्राप्त करनेके इच्छुक पुरुषोंको चाहिये कि अपने कर्तव्यका निरन्तर विचार करें.

संसारमें जीवोंकी दो अवस्थायें देखनेमें आती हैं एक सुखरूप, दुसरी दुखरूप. हम देखते हैं कि कोई धनवान तो बडे आनन्दके साथ रबड़के पहियोंकी विक्टोरिया गाडीमें बैठे हुवे बाग़की स्वच्छ, शीतल, सुगन्धमिश्रित पवनका सेवन कर रहे हैं और उन्हीके सईस कठोर कंकरीली तप्तायमान पृथ्वीपर नंगेपैरों पसेव लिप्त शरीर आगे आगे दौडते हुवे अति दुखके साथ समय व्यतीत करते हैं इसी प्रकार सुखदुःखके हज़ारों नहीं बलकि लाखों दृष्टान्त निरन्तर देखनेमें आते हैं धनवानके सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने और सईसके दुःखपूर्वक जीवन व्यतीत करनेका कोई कारण अवश्य है. वह कारण सिर्फ पुण्य और पापही है अतएव पुण्यका प्राप्त करना और पापोंका परिहार करनाही सुख प्राप्तिका अद्वितीय उपाय है अब पुण्य और पापका स्वरूप जानना चाहिये.

श्रीमदुमास्वामी महाराजने श्रीमोक्षशास्त्रके (तत्वार्थ सूत्र) छटे अध्यायके तीसरे सूत्रमें कहा है कि (शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य) अर्थात् शुभ परिणामोंसे पैदा हुवा योग (मन वचन कायकी क्रियारूप) पुण्य प्रकृतियोंका आश्रव करता है और अशुभ परिणामोंसे पैदा हुवा योग पापरूप कर्मोंका आश्रव करता है । जैसे पञ्चपरमेष्ठीकी भक्ति करना,

जीवोंकी रक्षा करना, परउपकार करना, सत्य बोलना, इत्यादि शुभयोग हैं इनसे पुण्यरूप कर्मोंका आश्रव होता है तथा जीवोंका घात करना असत्य बोलना, परधन हरण करना, ईर्षाभाव रखना इत्यादि अशुभ योग हैं.

तात्पर्य्य यह है कि जो पुरुष अर्हन्त परमात्माकी भक्ति आदि शुभकारणोंको मिलाकर श्री अर्हन्त परमात्माके असली स्वरूपको अनुभव (चिन्तवन) करते हैं उनके सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्ररूप रत्नत्रय धर्म तथा उत्तम क्षमादि दश धर्म स्वयं उत्पन्न होते हैं क्योंकि यह नियम है कि महात्माओंके चरित्र पढ़ने व उनकी परम शान्तमयी मूर्तिका अवलोकन करने व उनकी बाह्यविभूति जो समवशरण नामक सभा है उसका चिन्तवन करने और अन्तरंग विभूति अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान अनन्त सुख अनन्त वीर्य्यसहित अष्टादश दोषोंसे रहित महात्माका चिन्तवन करनेसे अपूर्वभक्ति रसाऽमृतका पान होता है जिससे महान पुण्यबंध होकर ध्यान व भक्ति करनेवाले भव्यपुरुषभी परमात्मपदको प्राप्त हो जाते हैं और पापी पुरुषोंके चरित्र पढने व उनकी पापमयी मूर्तिका विचार करनेसे चित्त मलिन होकर मनुष्य पापी हो जाता है.

महाशयों ! जिस समये आप श्रीअर्हन्त परमात्माके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण, कल्याणकोंकी शोभा तथा ४६ छियालीस गुणोंका चिन्तवन करके उनके परमौदारिक सुवर्णकान्तियुक्त शरीरका जिसकी कान्तिके आगे कोटि सूर्य्यका प्रकाशभी मन्द हो जाता है तथा जो समवशरणके मध्य तीन पीठ पर स्थित गन्धकुटीमें सुवर्णमयी सिंहासनके उपर रक्तवर्ण सहस्रदलयुक्त कमलके उपर चार अङ्गुल अन्तरीक्ष (अधर) पद्मासन विराजमान हैं उनका चिन्तवन करेंगे व अपनेको मनुष्योंकी सभामें बैठा हुवा खयाल करके श्रीअर्हन्त परमात्माके मुखसे निरक्षरी, मेघध्वनिके समान दिव्यध्वनिमें सत्यधर्मोपदेशाऽमृतकी वर्षा हो रही है और द्वादश सभाओंमें असंख्याते जीव हर्षचित्त बैठे हुवे धर्मोपदेशाऽमृतका पान कर रहे हैं और मैं भी साक्षात् श्रीअर्हन्त परमात्माका दर्शनकर रहा हूं

इस प्रकार चिन्तवन करेंगे उस समय एक अपूर्व ही आनंद उत्पन्न होगा. जिस समय जीवोंको परमात्माके स्वरूपका यथार्थ अनुभव हो जाता है उस समय जिनपूजन, दर्शन, जाप्य, ध्यान आदि समस्त धर्मकार्य्योंमें चित्त लवलीन होने लगता है.

हमारे बहुतसे भाई प्रायः यह कहा करते हैं कि क्या किया जाय हम पूजन जाप्य सामायिकादि तो करते हैं परन्तु चित्त नहीं लगता बल्कि और ज्यादा परिणामोंमें चञ्चलता हो जाती है उसका मुख्य कारण यही है कि उनको परमात्माके स्वरूपका यथार्थ अनुभव नहीं हुवा है जिस तरह ये लोग सांसारिक कार्य्योंको अच्छी तरह जानते व करते हैं उसी तरह यदि परमात्माके स्वरूपको जानते व यथार्थ भक्ति करते तो उपरोक्त वाक्य कदापि नहीं कहते कि मन नहीं लगता । जो मनुष्य जिस कार्य्यको अच्छी तरह जानता है और मन वचन कायसे रात्रि दिवस लवलीन रहता है उसको उस कार्य्यका विचार जाग्रत अवस्थामें तो क्या सोते समयभी बना रहता है उदाहरणके लिये रात्रिको स्वप्नोंका देखना. जिस तरह कोई २ बजाज जो रात्रिदिवस कपडेके बेचनेके ही ध्यानमें लवलीन रहता है सोते २ उठता है और अपने कपडोंकोही फाड़ने लगजाता है इसी प्रकार यदि किसीको परमात्माके स्वरूपका अनुभव होजाय तो फिर वह जिन पूजनादि कार्य्योंमें मन-वचनकायसे लवलीन होकर परमभक्तिरसाऽमृतका पान कर मोक्ष सुखके बीजभूत सम्यक्तकी प्राप्ति करके अविनाशी सुखोंका भोक्ता हो सक्ता है ऐसा जैनशासन में कथन किया है.

यद्यपि यह कार्य्य बहुत कठिन मालूम होता है परन्तु उपाय करनेसे अति कठिन कार्य्यभी सहज हो जाते हैं मैंने इसी इच्छासे यह "समव-शरणदर्पण" नामकी पुस्तक प्रकाशित कराई है कि जिससे परमात्माके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान हो । जैसे जुगराफिया पढ़कर नकशा देखनेसे दुनियाके प्रत्येक देश, नदी, पर्वत, आदिका यथार्थ ज्ञान हो जाता है इसी तरह जैन शास्त्रोंमें तीर्थंकर महाराजके चरित्र पढने व पञ्चकल्याण-

कादि उत्सव देखने व जिनमंदिरोंमें जो समवशरणकी रचना काष्ट वगैरा-की ज्यों की त्यों बनी रहती है देखनेसे परमात्माके स्वरूपका अनुभव भले प्रकार हो सक्ता है.

अन्तमें पाठकोंसे निवेदन है कि यदि यह पुस्तक आपको पसंद आई है तो इसके पढने पढानेको प्रचार शीघ्र मनवचनकायसे कीजिये ताकि मुझे द्वितीय वार यह ग्रंथ विस्तारपूर्वक प्रकाशित करानेका शीघ्र सुअवसर प्राप्त हो. मैंने समवशरणका कथन बहुत विस्तारके साथ संग्रह किया है। परन्तु प्रथम वार थोडासा कथन संग्रह करके प्रकाशित कराया जाता है ताकि अल्प मूल्य होनेसे सबको लेनेका सुभीता हो इत्यलम्। प्रार्थी

पं. मुन्नीलाल जैन मेनेजर,
जैनधर्मप्रचारक पुस्तकालय.
ठि. शुक्रवारी बाजार जि. सिवनी सी. पी.

(नोट) समवशरणकी यथार्थ रचना जोकी देहलीके लाला हरसुख-राय सुगनचंद्रजीके जैनमंदिरमें काष्टकी कई हजार रुपैकी लागत की बनी हुई विराजमान है उसके दर्शन करनेसे समवशरणका यथार्थ वर्णन अनुभवमें आ जाता है यह रचना श्रीभादोंजीके दशलाक्षणीजीके उत्सवमें छः सात गज लम्बे चौडे स्थानपर बडी २ चौकियोंपर रची जाती है जिन भाइयोंका ऐसे अवसर देहली जाना होय तौ वे उस रचनाका दर्शन अवश्य करें।

श्रीपरमात्मने नमः

अथ श्री अर्हन्तपरमात्माकी बाह्य विभूति समवशरणका व्याख्यान.

(अनुष्टुप् श्लोकाः)

समवस्थानकं तावत्स्तोष्ये तीर्थकृतामिह ।
अवसर्प्पिणि जातानामन्यथोत्सर्प्पिणीभुवाम् ॥१॥

अर्थात् इस उत्सर्प्पिणी कालमें जितने तीर्थंकर हुवे हैं उनके समवशरणका वर्णन करताहूं यद्यपि उत्सर्प्पिणीकालके तीर्थंकरों के समवशरणादिकाभी वर्णन करना उचितं है परन्त उनके समय-शरणमें भिन्नता है इसलिये नहीं किया जाता है.

द्विषड्योजनमानाभूद्वृत्ता नीलमणिप्रभा ।
निर्मलोल्लसदंशूनां निकरैर्वृषभेशिनः ॥ २ ॥

अर्थात् श्रीवृषभनाथभगवानके समवशरणकी पृथ्वी गोलाकार, नीलमणि, के समान प्रभावाली और दैदीप्यमान किरणों के समूहसे अत्यन्त उज्ज्वल वारायोजन प्रमाणथी.

ततोर्द्धयोजनन्यूना परतः परतः क्रमात् ।
तावन्नेमीश्वरं यावत्पादो नान्त्यद्वयोः पृथक् ॥ ३ ॥

अर्थात् श्रीवृषभनाथ स्वामीसे आगे समवशरणकी भूमिका प्रमाण क्रमसे नेमिनाथ भगवान तक आधा २ योजन न्यून समझना चाहिये.

सोपानानां सहस्राणि विंशतिर्दिक्षु हस्तमाः ।
व्यासोत्तुङ्गत्वमानेनोर्ध्वोर्ध्वं ते स्वर्णनिर्मिताः ॥ ४ ॥

अर्थात् समवशरणके चारोंतरफ बीस हजार सीढियें होती हैं उनकी चौडाई तथा ऊंचाई एक २ हाथप्रमाण है और वे सब ऊपर २ सोनेकी बनी हुई होती हैं.

चतुःसाला तथा वेद्यः पञ्चाष्टक्ष्माःत्रिपीठकम् ।
मध्ये गन्धकुटीनाम प्रासादः सर्वदर्शिनः ॥ ५ ॥

अर्थात् चार प्राकार, पांच वेदिका, आठ पृथ्वी, और तीन पीठ हैं । इनके बीचमें सर्वज्ञ भगवानकी गन्धकुटी है.

एतदन्तर्धराश्चाष्टौ प्रासादश्चैत्यखातयोः ।
लतोपवनकेतूनां कल्पांगगृहसद्गणाः ॥ ६ ॥

अर्थात् इनके बीचमें चैत्यपृथ्वी, खातपृथ्वी, लतापृथ्वी, उपवनपृथ्वी, ध्वजापृथ्वी, कल्पांगपृथ्वी, गृहपृथ्वी और सद्गणपृथ्वी इसतरह आठ पृथ्वी है. अब इन आठों भूमियोंका क्रमसे वर्णन करते हैं.

एकैकं मन्दिरं जैनं प्रासादः पञ्चकं ततः ।
अम्राद्या भान्ति सद्वाप्यो वनान्याद्यधरातले ॥७॥

अर्थात् पहली चैत्यनाम की भूमिमें एकएक जिन मंदिर पांच हर्म्य (आलय) तीन वापिकायें, और वन हैं.

स्वच्छाम्भो रत्नसोपानं मरालाद्यैर्मनोहरम् ।
नाना जलचरैः कीर्णमुच्छलद्वीचिशोभितम् ॥८॥
जिनोदयचतुर्थांशागाधं कल्हारपिञ्जरम् ।
द्वितीयं भूतलं खातं राजत्युत्फुल्लवारिजम् ॥९॥

अर्थात् दूसरी खातनामकी पृथ्वी, निर्मलजलकी भरीहुई, रत्नोकी सीढ़ियोंसे संयुक्त, हंसादि उत्तम २ पक्षियोंसे मनोहर, नानातरहके जलजन्तुओंसे भरी, जिसें तरंगे उछलरही हैं जिन भगवानकी जितनी ऊंचाई है उससे चतुर्थांश गहरी, कल्हारजातिके कमलोंसे पीली होरही है और जिनमें कमलफूल रहे हैं भावार्थ जिसकी शोभा अनिर्वचनीय है.

सदेवद्वंद्ववल्यादिमंडपैर्द्योतते चिता ।
पुन्नागनागमुख्यागैस्तृतीया भूर्लताह्वया ॥ १० ॥

अर्थात् तीसरी लतानामकी पृथ्वी, देवदेवांगनाओंसे युक्त लता-मंडपोंसे तथा पुन्नागवृक्ष नागवृक्षादि उत्तम उत्तम तरुओंसे शोभायमान है.

अशोकसप्तपर्णाख्यचम्पकाम्रलसद्वनैः ।
राजते वनभूर्दिक्षु क्रीडागैश्चैत्यवृक्षकैः ॥ ११ ॥
तत्प्रत्येकैकवृक्षोस्ति त्रिशालान्तस्त्रिपीठगः ।
जिनबिम्बचतुष्कन्धो मानस्तम्भचतुष्ककः ॥१२॥

अर्थात् चौथी उपवन नामकी वसुन्धरा अशोक, सप्तपर्ण

चम्पक, और आम्र इन चार प्रकारके वृक्षोंके चार वनोंसे तथा चैत्यवृक्ष और क्रीडा पर्वतोंसे-शोभायमान है उन चारों वनोंमें तीन कोट करके युक्त, तीन मेखलाओंके मध्यमें रहनेवाला, जिनप्रतिमा तथा चार मानस्तम्भोसे शोभित एक २ अपनी २ जातिवाले वृक्षोंमेंसे चैत्यवृक्ष होता है इस श्लोकके खुलासाके लिये आदि पुराणजीके श्लोक लिखे देते हैं.

भ्रेजिरे बुध्नभागेस्य प्रतिमादिक्चतुष्टये ।
जिनेश्वराणामिन्द्राद्यैः समवाप्ताभिषेचनाः ॥ १३ ॥
यथाऽशोकस्तथाऽन्येऽपि विज्ञेयाश्चैत्यभूरुहाः ।
वने स्वेस्वे स्वजातीया जिनबिम्बेद्धबुध्नकाः ॥१४॥
अशोकः सप्तपर्णश्च चम्पकश्चूत एवच ।
चत्वारोऽमी वनेष्वासन्प्रोत्तुङ्गाश्चैत्यपादपाः ॥१५॥

अर्थात् उस अशोक वृक्षके नीचे भागमें चारो दिशाओंमें इन्द्रादि देवताओंके अभिषेकादिसे पूजित भगवानकी प्रतिमायें हैं जिसतरह यह अशोकवृक्ष है उसीतरह उन चारों वनोंमें जिनभगवानकी प्रतिमाओंसे युक्त चम्पक, सप्त पर्ण, तथा आम्र वृक्षोंको भी समझना चाहिये. भावार्थ अशोकचैत्यवृक्ष, सप्तवर्ण चैत्यवृक्ष, चम्पकचैत्यवृक्ष, और आम्रचैत्यवृक्ष, इसतरह चारों वनोंमें अपनी २ जातिके नामवाले चार चैत्यवृक्ष हैं.

नृत्यशालाः क्वचित्क्रीडापर्वता मन्दिराणि च ।
रत्नसोपानपद्माङ्का वाप्यो नद्यश्च कुत्रचित् ॥ १६ ॥

सिक्तास्तद्वनवापीनां जलैः पश्यन्ति जन्तवः ।
भवमेकं गताऽगामि भवान् सप्तदीक्षणात् ॥१७॥

अर्थात् उस उपवन भूमिमें कहीं तो क्रीडा करनेके पर्वत हैं कहींपर मंदिर बने हैं कहींपर रत्नोंकी सीढियोंवाली तथा कमलोंसे मनोहर वापिकायें हैं और कहींपर नदियें बह रही है । उन उपवनकी वापिकाओं नदियोंके जलसे जिन लोगोंका सिञ्चन किया जाय उन्हें अपने एक भवका वृत्तान्त मालूम हो जाता है और जिन लोगोंको उनके देखनेका साक्षात् मौका मिलता है उन्हें व्यतीत हुवे और आगामी होनेवाले सात भवोंका वृतान्त मालूम पडजाता है.

सिंहेभोक्षशिखिस्रक्त्वक्ताक्ष्र्यचक्राब्जहंसकैः ।
दिशं प्रत्येककेतूनां शतमष्टोत्तरं पृथक् ॥ १८ ॥
केतुभूश्चतुराशासु भात्यमीभिश्चतुर्गुणैः ।
मुख्यैः क्षुद्रध्वजैरष्टशतेनाभिहतैः परैः ॥ १९ ॥

अर्थात् पांचवीं ध्वजानामकी वसुन्धराके सिंह, हाथी, वृषभ, मयूर, माला, वस्त्र, गरुड, चक्र, कमल, और हंस इसतरहसे दश भेद हैं। ये दशोंप्रकारकी ध्वजायें चारोंदिशामें एकसौआठ आठ हैं उपरोक्त उन्तीसवें श्लोकमें ध्वजाओंके परिवारका वर्णन है परन्तु हमारी समझमें इसका पदार्थ ठीक २ नहीं बैठा इसलिये अर्थ नहीं लिखा है । सब ध्वजाओंका जितना परिवार है वह संख्या आगेके श्लोकसे खुलासा हो जायगी.

चतुर्लक्षाः सहस्राणि सप्ततिर्ध्वजभूतले ।
शतान्यष्टावशीतिश्च ध्वजसंख्या चतुर्दिशां ॥२०॥

अर्थात् ध्वजानामकी भूमिमें चारोंदिशाओंमें जितनी ध्वजायें हैं उन सबकी संख्या चार लाख सत्तर हजार चारसौ अस्सी है. (४७०४८०)

दशधाकल्पवृक्षैर्भूः षष्ठीकल्पद्रुमाख्यया ।
चकास्तिसुरसंयुक्तैः श्रीसिद्धतरुमिश्रितैः ॥ २१ ॥
भाजनगृहभूषाङ्गवस्त्रभोजनपानदाः ।
ज्योतिःस्रग्वाद्यदीपाङ्गा दशधा कल्पभूरुहाः ॥२२॥

अर्थात् देवतालोग तथा सिद्धार्थवृक्षसेयुक्त दश प्रकारके कल्पवृक्षोंसे शोभित कल्पतरु नामकी छठी वसुन्धरा है। वे कल्पवृक्ष भोजन, गृह, भूषणांग, वस्त्र, भाजनांग, पानांग, ज्योतिषांग, माला, वाद्य, और प्रदीपांग इस तरह दश प्रकारके हैं.

त्रिशालांतस्थपीठत्रिमूर्द्धिसिद्धार्थपादपाः ।
दिशानमेरुमन्दारसन्तानाः पारिजातकः ॥ २३ ॥

अर्थात् तीनों प्राकारोंके मध्यमें स्थित तीनो पीठोंके ऊपर मेरु, मन्दार, सन्तान, और पारजात ये चार सिद्धार्थ वृक्ष है.

मूले तेषां चतुर्दिक्षु प्रतिमा सिद्धरूपकाः ।
दिव्यरूपमयाधस्थनिधानैस्ते मनोहराः ॥ २४ ॥

अर्थात् उन चारों सिद्धार्थवृक्षोंके मूलभागमें चारोंदिशाओंमें सिद्ध प्रतिमाये हैं। वे प्रतिमायें नाना प्रकारके दिव्यरत्नोंसे भरे हुवे नीचे भागमें स्थित खजानोसे शोभायमान हैं.

शालत्रयादिमध्यंस्था मूले च प्रतिमाङ्किताः ।
मानस्तम्भाश्चतुर्दिक्षु चत्वारः प्रतिपादपम् ॥ २५॥

अर्थात् तीनो प्राकारोंके मध्यमें रहनेवाले और मूलभागमें प्रतिमाओंसे युक्त चार मानस्तम्भ चारोंदिशाओंमें प्रत्येक सिद्धार्थ वृक्षके पास हैं.

नृत्यद्गायत्सुरैः पूर्णा जिनार्चास्नपनोद्यतैः ।
भूषयन्ति गृहा रम्याः सप्तमीं गृहकाश्यपीम् ॥२६॥

अर्थात् जिनभगवानकी पूजन तथा अभिषेकके लिये तत्पर और नृत्य करनेवाले तथा गानेवाले देवतालोगोंसे भरे हुवे मनोहर गृह, सातमी गृह नामको भूमिको अलंकृत करते हैं.

स्वच्छस्फटिकशालान्तः कोष्ठा द्वादश भान्तिहि ।
विचित्रभूतिसंकीर्णे मुक्तालम्बूषसुंदरे ॥ २७ ॥
श्रीमंडपे गणक्ष्मायां रत्नस्तम्भैः समुद्धृते ।
आकाशस्फटिकाच्छाभिर्बद्धाषोडशभित्तिभिः ॥२८

अर्थात् निर्मलस्फटिककी नानाप्रकारकी सम्पदासे पूर्ण जिस्में चारोंओर मोतियोंकी मालायें लटक रही हैं और रत्नोंके स्तम्भोंका जिनें आधार है ऐसे श्रीमंडपमें आकाश स्फटिकके समान निर्मल सोला भित्तियोंसे युक्त बारा कोठे हैं.

तेषु मुन्यप्सरःस्वार्य्या ज्योतिभौमासुरस्त्रियः ।
नागव्यन्तरचन्द्राद्याः स्वर्भूनृपशवः क्रमात् ॥ २९ ॥

अर्थात् उन बारा कोठोंमें क्रमसे मुनि, कल्पवासी देवोंकी

देवांगनायें, आर्य्या, ज्योतिषीदेवोंकी स्त्रियें, व्यन्तरदेवोंकी स्त्रियें, भवनवासी देवताओंकी स्त्रियें, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, कल्पवासी, मनुष्य और पशू बैठेत हैं.

वैडूर्य्यस्वर्णमाणिक्यमयं पीठत्रयं ततः।
अष्टचतुश्चतुश्चापप्रांशुपर्य्युपरि स्थितम् ॥ ३० ॥

अर्थात् श्रीमंडपके मध्यभागमें वैडूर्य्यमणि, स्वर्ण, और माणिक्यसे बने हुवे तीन पीठ हैं। ये क्रमसे आठ धनुष, चार धनुष, तथा चार धनुष ऊंचे हैं और एकके ऊपर एक स्थित हैं.

सोपानाः षोडशाष्टाष्टौ नानारत्नविचित्रिताः।
क्रमशस्त्रिषु पीठेषु चतुर्भागेषु भान्ति ते ॥ ३१ ॥

अर्थात् उन तीनों पीठोंमें क्रमसे सोलह, आठ, और आठ सीढियें अनेक तरहके रत्नोंकी बनी हुई हैं। ये सीढियें चारों तरफ समझनी चाहिये।

कृताञ्जलिभिरानम्रमस्तकैर्भक्तितः स्थितैः।
स्फुरद्भिर्धर्मचक्रैस्तदुद्धृयते यक्षनायकैः ॥ ३२ ॥
अनेकपूजनैर्द्रव्यैर्भृंगाराद्यष्टमङ्गलैः।
चतुर्दिक्षु समुद्भाति पीठमाद्यं कृतार्चनम् ॥ ३३ ॥

अर्थात् जो अपनी अञ्जुलिको ललाट भागमें लगाये हुवे हैं, जिनके मस्तक नम्र हो रहे हैं, और भक्तिपूर्वक खड़े हुवे, ऐसे यक्षोंके हाथसें धारण किये हुवे, देदीप्यमान धर्मचक्र, अनेक प्रकारके पूजन द्रव्य तथा, भृंगार, कलश दर्पण आदि आठ प्रकारके

मंगल द्रव्योंसे भूषित पहला पीठ चारों दिशाओंमें मनोहर शोभाको धारण किये हुवे है.

प्रथमं पीठमारुह्य सर्वे गणधरादयः ।
जिनं प्रदक्षिणीकृत्य पूजयित्वा मुखं मुखं ॥ ३४ ॥
असंख्यगुणश्रेणानि छित्वा कर्माणि संस्तवैः ।
स्वान्सोपानान् समुत्तीर्य स्वं स्वं कोष्टं श्रयन्तिते ३५

अर्थात् गणधरादि सम्पूर्ण लोग पहले पीठपर चढकर और जिनदेवको प्रदक्षिणा देकर चारों दिशाओंमें चतुर्मुख जिनदेवकी यथायोग्य पूजन करते हैं । तथा जिनदेवके भक्तिपूर्वक स्तवनादि- से असंख्यातगुणश्रेणि कर्मोंका नाश करके अपने २ मार्गसे उतर कर अपने अपने कोटेमें बैठते हैं.

चक्रेभसिंहमालोक्षव्योमपक्षीशपद्मकैः ।
ध्वजैर्कुप्सुचाष्टासु निधिभिर्नवभिस्ततैः ॥ ३६ ॥
अष्टभिर्मंगलैर्नानार्चाद्रव्यैर्धूपसद्घटैः ।
अनेकाश्चर्य्यकारीदं पीठं भात्यार्थितंपरम् ॥ ३७ ॥

अर्थात् नाना तरहके आश्चर्य्यको उत्पन्न करनेवाला दूसरा पीठ चक्र, सिंह, हाथी, माला, ऊंट, वस्त्र, गरुड़ और कमल आदि दश प्रकारकी ध्वजाओंसे, चारोंतरफ विस्तृत नवनिधियोंसे कलश, चामर, दर्पणादि आठ मंगल द्रव्योंसे, अनेक प्रकारके पूजनद्रव्योंसे और धूपके उत्तम २ कलशोंसे अतिशय शोभाको धारण किये हुवे हैं.

षट्शतायामविस्तीर्णा धनुर्नवशतोच्छ्रितिः ।
आद्येऽन्येषु क्रमान्न्यूना प्रस्फुरद्रत्नदीपिका ॥ ३८ ॥
गोशीर्षादिसुगन्ध्युत्थधूपधूमाङ्किताचिता ।
रत्नैःपुष्पैर्ध्वजैः पीठे तृतीये गन्धकुट्टिका ॥ ३९ ॥

अर्थात् सबके ऊपरके तृतीय पीठपर छःसौ धनुष लम्बी और इतनीही चौड़ी तथा नवसौ धनुष ऊंची, जिसें रत्नोंकी दीपिकायें प्रज्वलित हो रही हैं चन्दनादि अत्यन्त सुगन्धित धूपके जलनेसे धूमसे व्याप्त हो रही हैं तथा अनेक तरहके रत्न, अत्यन्त सुगंधित पुष्प और ध्वजायें जिस्की चारोंओर अद्भुत शोभाको देरही हैं ऐसी जिन भगवानके विराजनेकी गन्धकुटी है। ऊपर कहा हुआ गन्धकुटीका प्रमाण श्रीवृषभ जिनेन्द्रके समयमें समझना चाहिये और तीर्थंकरोंमें क्रमसे न्यूनता है.

तत्र सिंहासने चारु घटितं स्फाटिकोपलैः ।
जटितं बहुमाणिक्यैर्घटाद्यैश्च विराजते ॥ ४० ॥

अर्थात् उस गन्धकुटीके ऊपर अत्यन्त मनोहर, और नानाप्रकारके उत्तम २ रत्नोंसे जड़ा हुवा स्फटिकमयी एक सिंहासन है.

तन्मध्ये कोमलं पूतं शोणिताब्जमनूपमम् ।
सहस्रदलमत्रान्तः कर्णिकायां नभोङ्गणे: ॥ ४१ ॥
चतुरङ्गुलमानेऽर्हन्साश्चर्यं सन्निविष्टवान् ।
सालोकं लोकमापश्यन् जानन्वक्ति शुभाशुभं ४२

अर्थात् उस सिंहासनके बीचमें अत्यन्त कोमल, पवित्र, और जिसकी उपमाके लायक कोई नही हैं ऐसा हजार दलवाला लाल कमल है। उस्की बीचकी कर्णिकामें चार अङ्गुल अन्तरीक्ष आकाशमें जिनभगवान लोकाकाश तथा अलोकाकाशको देखते हुवे विराजमान होते हैं। और जीवोंके शुभाऽशुभको जानकर यथार्थ प्ररूपण करते हैं.

क्षुधादिदोषनिर्मुक्तः सर्वातिशयभासुरः ।
प्रासानंतचतुष्कोसौ कोट्यादित्यसहक्प्रभः ॥ ४३ ॥
प्रातिहार्य्याष्टभूतीशस्त्रिसन्ध्यं क्षणदान्तरे ।
प्रभुः षण्णाडिका यावत्सूत्रार्थं ध्वनिना वदेत् ॥ ४४ ॥

अर्थात् क्षुधा, पिपासा, जरा, आंतङ्क, जन्म, मर्ण, शोक, भय, चिन्ता, प्रस्वेदादि अठारह प्रकारके दोषोंसे रहित तथा दश जन्मके, दश केवल ज्ञानके और चौदह देवताओंके इस तरह चौतीस अतिशयोंसे बिराजमान, जिन्हें अनंत दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख, और अनन्त वीर्य्य ये अनंतचतुष्टय प्राप्त होगये हैं और अष्ट प्रातिहार्य्यों से शोभित, और जिनके शरीरकी कान्ति कोटि सूर्य्य से भी अधिक है ऐसे त्रिभुवन स्वामी श्रीजिनदेव अपनी मेघ समान दिव्यध्वनिसे प्रातःकाल, मध्यान्हकाल, सायंकाल, और आधी रात्रिमें, तत्वोंका उपदेश नियमपूर्वक करते रहते हैं। रात्रिके समय जो दिव्य ध्वनि होती है वह छः नाड़िकाका जितना समय होता है उतने समयतक होती है. एक नाड़िका एक घड़ीकी होती है.

जैनमश्वासरोधं वो गम्भीरं सर्वकायजम् ।
निर्दोषं सर्वभाषात्म्यं वर्णाऽतीतं वचोवतात् ॥४५॥

अर्थात् जिसमें स्वासका निरोध नही है, गम्भीर, सर्व शरीर से उत्पन्न होनेवाला, निर्दोष, जिसमें सर्व भाषाका समावेश रहता है। भावार्थ दिव्य ध्वनिका यह माहात्म्य रहता है कि समवशरणमें जितनी जातिके लोग रहते हैं वे सब अपनी २ भाषामें समझलेते हैं। और जो अक्षरस्वरूप नही है ऐसा जिनभगवानका वचन तुम लोगोंकी रक्षा करें.

इन्द्रचापच्छविः शाल आद्योऽन्यस्तप्तकाञ्चनः।
रुक्मस्फटिकवर्णौ द्वौ वेदिकारुक्महेमभाः ॥ ४६ ॥

अर्थात् इन्द्र धनुषके समान कान्तिको धारण करने वाला पहिला प्राकार है। दूसरा तप्त सोनेके समान है और तीसरा तथा चौथा प्राकार क्रमसे चांदी तथा स्फटिक के समान कान्ति वाले हैं और वेदिकायें चांदी तथा सोनेकी प्रभाके समान प्रभावाली हैं.

शाला मूलक्रमाद्धीना वेदिकाः सर्वतः समाः ।
नवाऽपि केतुभिर्भान्ति सच्चर्य्याऽट्टालकैर्गृहैः ॥४७॥

अर्थात् प्राकार तो नीचेके भागसे क्रमसे हीन हैं अर्थात् जो चौडाई ऊपर की है वह मूल भागमें नहीं है और वेदिकायें चारों-तरफसे एक ही सरीखी है ये सबही ध्वजाओंसे तथा जिन गृहोंके उत्तम २ अट्टालक (मकानका पृष्ठ भाग) हैं ऐसे गृहोंसे शोभायमान हैं.

तदेकं गोपुरं द्वारं हेमं षड् राजितानि वै ।
हरिन्मणिमये द्वे च राजन्ते बहुरत्नकैः ॥ ४८ ॥

अर्थात् प्राकार और वेदिकाओं के जो गोपुर द्वार हैं उनमें एक सुवर्णका बना हुआहै छः चांदीके बने हुवे हैं और दो हरिन्मणिके बने हुवे हैं । ये सर्व गोपुरद्वार नाना प्रकारके रत्नोंसे शोभायमान हैं.

द्वारेषु त्रिषु सद्दंडाज्ज्योतिष्का धारयन्त्यथ ।
द्वयोर्यक्षा द्वयोर्नागा द्वयोः कल्पामरावराः ॥४९॥

अर्थात् उन नव द्वारोंमेंसे तीन द्वारोंमें तौ ज्योतिषी देव दंडको धारण किये हुवे है । दो द्वारमें यक्ष देव, दो द्वारोंमे भवनवासी देव और दो द्वारों में स्वर्ग के देवता दंडको धारण किये हुवे रहते हैं.

चतुर्दिक्ष्वाद्यवीथीषु मानस्तम्भाश्चकासति ।
शालत्रितयमध्यस्थत्रिपीठोपरिवर्तिनः ॥ ५० ॥

अर्थात् आदिकी वीथियोंमें, तीनों प्राकारोंके बीचमें स्थित तीनों पीठोंके ऊपर रहनेवाले चार मानस्तम्भ चारों दिशाओंमे हैं.

तेच मूला चतुष्कोणा वर्तुला उपरिस्थिताः ।
विचित्रा भान्ति घण्टाद्यैर्मूर्धस्थजिनबिम्बकाः ५१

अर्थात् वे चारों मानस्तम्भ नीचेके भागमें तौ चतुष्कोण हैं । ऊपर के भाग में गोलाकार है । जिनके ऊपर जिनदेवकी प्रतिमायें हैं और घण्टादिकों से अत्यन्त सुन्दर हैं.

प्रत्येकं कुण्डयुग्माढ्याश्चतुराशं चतुर्ह्रदाः ।
तेषां नामान्यतो वक्ष्ये पूर्वादिषु प्रदक्षिणम्॥५२॥

अर्थात् उनमानस्तम्भोंके चारो ओर दो २ कुंडोंसेयुक्त चार २ ह्रद (वापिकायें) हैं उन सबोंके नाम पूर्वादि दिशाओंवो क्रमसे कहता हूं.

आद्या नन्दोत्तरानन्द्या, नन्दवन्नन्दघोषिका ।
विजया वैजयन्ती च, जयन्त्याख्याऽपराजिता॥५३
अशोका सप्रतिबुद्धा कुमुदा पुण्डरीकिणी ।
चित्तानन्दा महानन्दा, सप्रबुद्धा प्रभंकरी॥ ५४ ॥

अर्थात् क्रमसें नंदोत्तरा नंदा, नन्दवत्, नन्दघोषिका, विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता, अशोका, सप्रतिबुद्धा, कुमुदा, पुंडरीकिणी, चित्तानंदा, महानंदा, सप्रबुद्धा, और प्रभंकरी इसतरह ये सोलह ह्रद (वापिकायें) हैं.

स्वच्छपानीयपूर्णानां, सच्छन्नानां महोत्पलैः ।
आसां श्रियं प्रशक्नोति, वक्तुं शक्रोऽपिनाऽखिलां५५

अर्थात् अत्यन्त निर्मल जलसे भरी हुई और जिनमें कमल इतने प्रफुल्लित हो रहे हैं जिनसे बिल्कुल ढकी हुई मालूम पडतीहैं । ग्रंथकार कहतेहैं कि इन वापिकाओं की शोमाको अच्छीतरहसे वर्णन करने को इन्द्रभी समर्थ नही हैं तौ फिर हम सरीखे मतिहीन पुरुष कहांतक पार पासकेंगे ?

त्रिभूमिराद्यवीथीषु द्वेद्वे स्तो नृत्यशालिके ।
पार्श्वद्वये च तत्पार्श्वे द्वौद्वौ धूपघटौ स्मृतौ ॥५६॥

अर्थात् पहली वीथियोंमें तीनतीन मजली दो २ नृत्य शालाये हैं। नृत्य शालाओंके दोनों पार्श्वभागमें दो २ धूपके घट समझने चाहिये.

एकैकं नृत्यशालायां द्वात्रिंशत्प्रेक्षणीयकाः ।
एकैकस्मिंश्च नृत्यन्ति द्वात्रिंशद्भावनाङ्गनाः॥ ५७॥

अर्थात् एक २ नृत्यशालामें बत्तीस २ रङ्गभूमिये हैं और एक एक रंग भूमिमें बत्तीस २ भवनवासियोंकी देवांगनायें नृत्य करती रहती हैं.

एवं चतुर्थवीथीषु नृत्यशालादयः स्मृताः ।
परमत्र प्रनृत्यन्ति वैमानामरकन्यकाः ॥ ५८ ॥

अर्थात् इसी तरह चौथी भूमिकी वीथियों में नृत्यशालादि समझनी चाहिये। किन्तु विशेष यह है कि इस वीथीमें कल्प-वासी देवों की कन्यायें नृत्य करती हैं.

तद्विगुणनाट्यशालाः षष्ठवीथीषु भान्ति च ।
परं पञ्च भुवस्त्वेता नृत्यज्योतिषकन्यकाः ॥ ५९ ॥

अर्थात् छठी भूमिकी वीथियों में, जो संख्यायें नृत्य शालाओं की ऊपर कह आये हैं उससे द्विगुणित समझनी चाहिये । परन्तु भूमियें तो पांच हीहैं। और इनमें ज्योतिषी देवोंकी कन्यायें नृत्य करती हैं.

सप्तमी भूमि वीथीषु सच्छत्रध्वजमङ्गला ।
सिद्धाऽर्हत्प्रतिमा कीर्णाः स्तूपा नव नवाऽर्हताः ॥६०

अर्थात् सातवी भूमिकी वीथियों में छत्र ध्वजादि मंगल द्रव्यों से युक्त तथा सिद्ध प्रतिमायें अर्हन्त प्रतिमाओंसे शोभित नव स्तूप (रत्नकीराशि) हैं.

दिव्यरत्नमयाः सर्वे सर्वेंशुस्फुरदम्बराः ।
तके चान्तरिताभान्ति रत्नानां शततोरणैः ॥ ६१ ॥

अर्थात् देदीप्यमान रत्नोंसे बने हुवे, जिनकी किरणोंसे आकाश मंडल पूर्ण होरहाहै ऐसे वे नवही रत्नराशियें रत्नों के सौ (१००) तोरणोंसे अत्यन्त मनोहर मालूम पडती हैं.

अष्टानामपि भूमीनां वीथीनां पार्श्वयोर्द्वयोः ।
द्वारा वज्रकपाटाढ्या वंऽहयस्तोरणशोभिताः ॥६२॥

अर्थात् आठोंही वसुन्धराओंकी वीथियों (मार्गों) के पार्श्व-भागमें जो द्वार हैं वे वज्रमयी कपाटोंसे युक्त हैं और अनेक प्रकार रत्नादिकों के तोरणोंसे शोभित हैं.

प्राच्यां विजयकं द्वारमपाच्यां वैजयन्तकं ।
प्रतीच्यां यजयन्ताऽऽख्यमुदीच्यामपराजितम् ६३

अर्थात् पूर्व दिशामें विजयक द्वार, दक्षिणदिशामें वैजयन्त द्वार, पश्चिमदिशामें जयन्त द्वार, और उत्तर दिशामें अपराजित द्वार इस तरह क्रमसे चारों दिशाओंमें चार द्वार हैं.

षट्त्रिंशद्गोपुराणां स्युर्बहिरन्तरदेशकैः ।
द्वारस्य द्वयपार्श्वस्था निधयो मङ्गलानि च ॥६४॥

अर्थात् बाहिर भाग और भीतर भागमें छतीस गोपुर द्वार हैं और उन सब द्वारोंके दोनो पार्श्व भागमें निधियें और मंगल द्रव्य हैं.

पांडुकालमहाकालाः पद्मनैसर्पमानवाः ।
शङ्खपिङ्गलरत्नाख्या एकैकोष्टशतप्रभाः ॥ ६५ ॥

अर्थात् पाण्डु, काल, महाकाल, पद्म, नैसर्प, मानव (मनुष्य) शंख, पिङ्गल, और रत्न इसतरह ये नव निधियें हैं और इन सबकी संख्या एक सौ आठ २ हैं.

धान्यर्तवस्तु भांडानि वस्त्रप्रासादकाऽयुधान् ।
तूर्याभरणरत्नानि यच्छन्ति निधयः क्रमात् ॥ ६६ ॥

अर्थात् उपर्युक्त नव ही निधियें क्रमसे धान्य, प्रत्येक ऋतु सम्बन्धि पदार्थ, भाजन, वस्त्र, आलय, (गृह) आयुध, वाद्य, आभूषण, और रत्न इन पदार्थोंको देती हैं.

छत्रचामरभृङ्गारतालकुम्भाब्दकेतवः ।
शुक्तिः प्रत्येकमाभान्ति मंगलान्यष्टकं शतम् ॥६७॥

अर्थात् उन गोपुर द्वारों में छत्र, चामर, झारी, व्यजन (पंखा), दर्पण, ध्वजा और कलश ये आठों मंगल द्रव्य एकसौ आठ हैं.

चन्दनागुरुकर्पूरगोशीर्षादिधूपभृत् ।
गोपुरद्वार्द्वये पार्श्वे त्वेकैको धूपसद्घटः ॥ ६८ ॥

अर्थात् चंदन, अगर, कर्पूरादि, अच्छी २ सुगंध वस्तुओंसे बनी हुई धूपसे भरे हुवे एक २ घट गोपुरद्वार के दोनो पार्श्व भागमें हैं.

द्वाराणां रत्नसोपानां बाह्याभ्यंतरदेशके ।
मध्येपार्श्वद्वये शाल्ये नृत्यस्य मणिनिर्मिते ॥ ६९ ॥

अर्थात् उन गोपुर द्वारोंके बाहर और भीतर रत्नोंकी सीढियें बनी हुई हैं और दोनों पार्श्वभागमें अनेक तरह की मणियों की बनी हुई दो नृत्य शालायें है.

सालानामुदयादुच्चस्तोरणोदय ईरितः ।
तस्मादप्यधिको ज्ञेयो गोपुराणां महोदयः ॥ ७० ॥

अर्थात् जितनी ऊंचाई प्राकारोंकी है उससे अधिक ऊंचाई तोरणोंकी है और जितनी तोरणों की है उससे भी ज्यादा ऊंचाई गोपुरों की समझनी चाहिये.

सर्वेषु गोपुरेषु स्युस्तोरणा रत्ननिर्मिताः ।
सकुम्भपुष्परत्नादि मालाघंटाद्यलंकृताः ॥ ७१ ॥

अर्थात् सम्पूर्ण गोपुरों के तोरण उत्तम २ रत्नोंके बने हुवेहैं तथा कलश, पुष्पमाला, रत्नमाला और घण्टा आदिअनेक पदार्थोंसे शोभित हैं.

धूलीशालिबहिर्भागाः शतं मकरतोरणाः ।
अन्तर्भागाः स्युरेकैकं शतं माणिक्यतोरणाः ॥ ७२ ॥

अर्थात धूली शालिके बाहिर भागमें मकराकार १०० सौ तोरणोंसे

युक्त हैं। और भीतर के एक २ भाग माणिक्य के बने हुवे सौ सौ तोरणोंसे शोभायमान हैं.

मिथ्यादृष्टिरभव्योप्यसंज्ञीकोऽपि न विद्यते ।
यश्चानध्यवसायोऽपि यः संदिग्धो विपर्य्ययः ॥७३

अर्थात् जिनेन्द्र देवके समवशरणमें मिथ्या दृष्टी, अभव्य, असंज्ञी, अनध्यवसायी, संशयज्ञानी, मिथ्याती जीव नहीं रहते.

तत्र मृत्युर्न नो जन्म न विद्वेषस्मरोद्गमौ ।
बुभुक्षा भीरुजा पीडा कस्यापि च न विद्यते ॥ ७४ ॥

अर्थात् समवशरणमें नतौ कोई मरणको प्राप्त होता है नकोई जन्म लेता है न किसीको किसीसे शत्रुभाव रहता है नकोई कामके वाणोंसे घायल होता है और न किसीके क्षुधासम्बन्धी तथा किसीके भयसम्बन्धी पीड़ा होती है । इसे केवल जिन भगवान का प्रभाव कहना चाहिये.

असंख्याताः सुरास्तत्र संख्याताः पशवो नराः ।
स्तोकमात्रेऽपि भूभागे प्रमान्त्यर्हत्प्रभावतः ॥७५॥

अर्थात् यह जिन देवका माहात्म्य है अथवा यों कहो कि उनके पुण्य की पराकाष्ठाका उदाहरण है जो केवल थोड़ीसी समवशरणकी पृथ्वी में असंख्याते देव और असंख्याते मनुष्य तथा पशू समाजाते हैं.

चत्वारिंशद्भवनेशा द्वात्रिंशद्व्यन्तराऽधिपाः ।
द्विर्द्वादश दिवाधीशाश्चन्द्राकौं सिंहचक्रिणौ ॥७६॥

आर्य्याः

इति शतशक्रैः प्रणुतं ध्यायतियः समवशरणभावेन।
समरसबुद्ध्यार्हन्तं सभवति मुक्तो दिनैः कतिभिः॥

अर्थात् जो भव्य पुरुष अपने भवातापसे सन्तापित आत्मा के शान्ति के लिये, चालीस भवन वासी देवों के इन्द्रों से, बत्तीस व्यन्तर देवों के इन्द्रोंसे, चौवीस कल्पवासी देवोंके इन्द्रोंसे, चन्द्र, सूर्य्य, चक्रवर्ति, तथा सिंह इस तरह सौ इन्द्रोंसे पूजित श्रीजिनदेव के समवशरण का भाव से ध्यान करते हैं वे थोडे ही दिनोंमें अविनाशी शिव सुखको भोगनेवाले होते हैं.

मालिनीछंद.

समवशरणलक्ष्मीर्योदृगस्ति प्रभूता।
कथयितुमिह वाचा तादृशी कोऽपि नालम्॥
तदपि हि जिनभक्त्या प्रेरितः किंचिदाख्यां।
वदति जलधिमानं बालकोऽत्राद्भुतं किम्॥ ७८॥

अर्थात् ग्रंथकार कहते है कि जिनभगवानके समवशरण की जो वास्तविक शोभा है उसे तो कोइभी कहने को समर्थ नही है। परन्तु जिन भगवानकी अखंड भक्ति से प्रेरणा किये हुवे मुझ सरीखे मंद मतिभी यदि कुछ वर्णन करें तौ कोई आश्चर्य्य की बात नही है। क्योंकि बालक यदि समुद्रके प्रमाणको कहने लगे तौ किसे आश्चर्य होगा.

भावार्थ ग्रंथ कारका यह तात्पर्य्य है कि यह मैंने जो समवशरण का वर्णन किया है वह केवल भक्ति वश किया है वास्तवमें वर्णन नहीं कर सक्ता क्योंकि जिस्के वर्णनमें बड़े २ नामी पुरुषों की भी जिव्हा स्तम्भ होजाती है वहां मेरी तौ गणनाही क्या है.

श्री इति सूरि श्रीजिनचन्द्रान्तेवासिना पंडित मेधाविना
विरचिते समवशरण वर्णन समाप्तः



श्री जिनेन्द्र दर्शन पाठ.

अर्थ व विधिसहित.

प्रायः देखाजाताहै कि हमारे जैनी भाई श्रीजिनेन्द्र दर्शन करना यथार्थ विधिके अनुसार नहीं जानते इसी कारण कितनेही भाई तौ जिन मन्दिरमें जाते ही नही है और जो जाते हैं वे शीघ्र थोडे से चावल बादाम लोंग वगैरा पटक जरा सिर नीचा कर ऐसे भागते हैं जैसे कोई कैदी कैदखानेसे छूटकर भागता है ऐसी अवस्थामें " जिनपूजासम पुण्यन दूजा " के कथन अनुसार पुण्यबंध किस-प्रकार कर सक्ते हैं इसी त्रुटिके दूर करनेके लिये यह पुस्तक प्रका-शित कराई गई है.

इसमें श्रीजिनमन्दिरजीमें प्रवेश करनेकी विधि, तथा काशी निवासी पंडितवर्य्य बिन्द्रावनजी रचित अर्हन्त स्तोत्र बहोत ही उत्तमढालमें है जिस्को पढने सुननेसे चित्त प्रसन्न होकर भाव उज्वल होते हैं, संस्कृत दर्शनपाठ, तथा पंडित दौलतरामजी कृत भाषा दर्शनस्तोत्र, तथा कोन २ द्रव्य लेकर दर्शन करना चाहिये। प्रत्येक द्रव्यका श्लोक मंत्र विधान, तथा प्राकृत भाषा का बहुतही उत्तम ढालमें पञ्चपरमेष्ठी स्तोत्र, जिनवाणी की स्तुति व प्रार्थना रात्रिको दीप धूपसे आरती करने के लिये आरती पाठ व जिनेन्द्र देवसे अन्तप्रार्थना आदि विषय संग्रह किये गये हैं प्रत्येक संस्कृत प्राकृतस्तोत्र व फुटकर श्लोक और मन्त्रों का भाषार्थ बडी सरलताके साथ लिखागया है जिस्को थोडीसी भाषा जाननेवालेभी श्री जिनेन्द्र

दर्शन करना योग्यरीतिसे जान सक्ते हैं. पुस्तक सफेद मोटे चिकने कागजपर बहौत सुंदर मोटे अक्षरों में सर्वोपरी जगत्प्रसिद्ध निर्णय-सागर प्रेस मुम्बईमें प्रकाशित कराई है मूल्य सर्व साधारणके सुभीते के लिये सिर्फढाई आने है डाकमहसूल डेढ़आना एक साथ पांच प्रति लेनेवालों को डाकमहसुल माफ.

पुस्तक मिलनेका पता,

पी. एम. एल. जैन मेनेजर

जैनधर्मप्रचारक पुस्तकालय,

ठि० शुक्रवारी बाजार,

मु० जिला सिवनी यूपी.

Seoni U. P.

कमीशन ? कमीशन ! ! कमीशन ! ! !

हमारे पुस्तकालयसे कमसेकम एक रुपियासे चार रुपयातक ग्रन्थ मंगानेवालोंको दो आना फी रुपिया पांच रुपियासे दश रुपियातक चार आना फी रुपिया कमीशन दिया जाता है.

जैनग्रन्थोंकी सूची.

यशोधरचरित्र २) पांडवपुराण २॥।) तेरह दीपका पूजनपाठ २॥) जिनदत्त चरित्र बहौत बढिया मजबूत जिल्दबंधा १) पार्श्वपुराण भाषा १॥) भाषासूक्ति मुक्तावली पं. बनारसीदास आगरानिवासीकृत एक सौ कवित्त सवैय्याछंद बहौत मोटे कागजपर बहौत मोटे अक्षरोमें ।) मनोवतीदर्शनकथा नाटक ⅃) निशिभोजननिषेध नाटक ⅃) कृपणचरित्र नाटक ⅃) ये तीनो नाटक बहौतही बढ़िया हैं जैन नाटक मंडलियां प्रायः इन्ही नाटकोंको करती हैं शेठ सुदर्शनकथा)।।। भाषापूजा संग्रह ॥) गिरनार पावागिरपूजा ⅃) शत्रुंजयपूजनपाठ ⅃) सप्तरिर्षापूजा)॥ नित्यपूजापाठ ।) भाषानित्यपाठसंग्रह ॥⅃) समाधिमरण बडा ⅃) बारै भावनासंग्रह)।।। निर्वाणकांड)। लावनीकर्ता खंडनकोट्)॥ जोगीराण)। हुक्कानिषेध)। प्रातःस्मरण पाठ ⅃) आलोचना पाठ)॥ बाईसपरीषहसंग्रह ⅃) संकटहरणवीनती)॥ उपदेश पचीसी व पुकार पचीसी)॥ श्रीमोक्षमार्ग प्रकासजी १॥।)

भजनोंकी पुस्तकें.

जिनेन्द्रगुणगायन (थ्येटरकी चालमें बहुत बढिया भजन नये छपे) ⅃) कुञ्जविलास ⅃) जैनपदसंग्रह नयीजकरी ⅃) ज्योतिप्रशादभजनमाला ⅃) न्यामतसिंहभजनमाला ⅃) प्रभूविलास ⅃) मंगतराय भजनमाला ⅃)॥ ह्रा ⅃)॥ जैनउपदेशी गायन ⅃)॥

श्रीदशलक्षण धर्मसंग्रह.

यह दशलक्षण धर्मसंग्रह ग्रंथ श्रीदशलक्षणजीके महान् पर्वमें प्रत्येक भाइयोंको पढना चाहिये इसको वारंवार स्वाध्याय करनेसे कैसाही तीव्र कषायी क्यों नहो मन्दकषायी (शान्तपरिणामी) होजाताहै और मन्दकषाय होनाही जीवको लौकिक पारलौकिक सुखोंको प्राप्त करानेवाला जैसे कषायले वर्तनमें रक्खा हुआ कैसाही सुस्वादु पुष्टकारक भोजन क्यों नहो खानेवालेको हानीही पहुंचाता है इसीप्रकार कैसाही तीव्र व्रत नियमादिके पालन करनेवाला क्यों नहो मंदकषायी हुवे विना श्रेष्ठ गति प्राप्ति नहीं होसक्ती श्रीपंडित अयधू कविविरचित प्राकृत दशलक्षण जयमालाको प्रत्येक पदका अर्थ लिखते हुवे पंडित सदासुखदासजीकृत दशलक्षणधर्मके व्याख्यानके आधारपर ? करीव एकसौ पत्रोंमें संग्रह करके सबके पढनेके सुभिते के लिये सफेद मोटे चिकने कागजपर मोटे अक्षरोंमें प्रकाशित कराया है मूल्य ॥=) दश आना.

मिलनेका पता.

पी. एस्. एल्. जैन मेनेजर जैनधर्मप्रचारक पुस्तकालय.

जिला सिवनी सी. पी.